आंध्र-सातवाहन
(The Andhra-Satavahanas)

2.14. आंध्र-सातवाहनों की उत्पत्ति *(Origin of the Andhra-Satavahanas)*

अनेक प्राचीन राजवंशों की ही तरह सातवाहनों की उत्पत्ति भी विवाद से परे नहीं है। सातवाहन-शक्ति का केंद्र महाराष्ट्र में प्रतिष्ठान (पैठन) था, जो एक प्रमुख व्यापारिक नगर भी था। साधारणतया यह माना जाता है कि सातवाहनों का उद्गम-स्थल आंध्रप्रदेश था, परंतु बाद में वे गोदावरी नदी के तट के साथ-साथ बढ़ते हुए पश्चिम में केंद्रित हो गए। मौर्य-साम्राज्य के पतन का लाभ उठाकर इन्होंने एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इसीलिए ये आंध्र-सातवाहन के नाम से विख्यात हुए। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि सातवाहन आरंभ में दक्षिण-पश्चिम में निवास करते थे, परंतु जब उन्होंने अपना प्रभाव पूर्वी तट पर बढ़ा लिया, तब वे आंध्र कहे जाने लगे। सातवाहनशासक **दक्षिणाधिपति, त्रिसमुद्राधिपति** तथा **त्रिसमुदतोयपीतवाहन** के नाम से भी विख्यात हैं। पुराणों में इन्हें 'आंध्र-भृत्य' भी कहा गया है। नानाघाट और नासिक से प्राप्त अभिलेखों में सातवाहन-कुल के राजाओं की जो सूची मिलती है, उसमें और पुराणों में वर्णित आंध्र-जाति के राजाओं की सूची में बहुत कुछ समानता है। इसी आधार पर सातवाहनों को आंध्र-भृत्य भी कहा जाता है। आर० जी० भंडारकर के अनुसार "पुराणों में उल्लिखित आंध्र-भृत्यवंश और उत्कीर्ण लेखों का सातवाहन वंश एक ही है।" उनके अनुसार आंध्र-सातवाहनों ने सिमुक के नेतृत्व में कण्वों का नाश किया। इनकी राजधानी धान्यकटक या धरणीकोट थी। बर्गेश, रैप्सन, बार्नेट, स्मिथ जैसे विद्वान इस मत से सहमत हैं।

अनेक विद्वान इस विचार से सहमत नहीं हैं कि आंध्र और सातवाहन एक ही थे। ऐसा सोचने का मुख्य आधार यह है कि सातवाहनों के किसी भी अभिलेख में उन्हें आंध्र नहीं कहा गया है। के० पी० जायसवाल के अनुसार, सातवाहन अशोक के अभिलेखों में वर्णित 'सत्तियपुत्त' थे। एच० सी० रायचौधरी का विचार है कि आंध्र नाम इस वंश के राजाओं के साथ बाद में उस समय जुड़ा जब उनके राज्य के उत्तर और पश्चिम के हिस्से उनके अधिकार से निकल चुके थे और वे शुद्ध रूप में आंध्र में ही सिमट गए थे और कृष्णा नदी के आसपास शासन करते थे। डॉ० सुखठणकर के अनुसार सातवाहन आंध्रक्षेत्र के नहीं थे। उनकी आरंभिक गतिविधियों का केंद्र पश्चिमी भारत था और राजधानी पैठन थी। डॉ० जी० याजदानी का विचार इस समस्या पर ज्यादा तर्कपूर्ण एवं प्रभावशाली प्रतीत होता है। उनका मानना है कि ये शासक आंध्र-जाति के थे और सातवाहन उनका कुलनाम था। इन्होंने आंध्र राजाओं के भृत्यों के रूप में शक्ति अख्तियार की। वे मौर्यों के पतन के समय से ही महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश पर आधिपत्य जमाए हुए थे। नहपान द्वारा पराजित किए जाने एवं पश्चिमी तट से निकाले जाने के पश्चात वे आंध्रप्रदेश सहित अन्य क्षेत्रों पर शासन करते रहे। गौतमीपुत्र द्वारा समस्त दक्कन पर अधिकार जमाने के बाद उसके पुत्र ने **दक्षिणाधिपति** की उपाधि धारण की। रुद्रदामन द्वारा पराजित होने पर वे पुनः स्वदेश आंध्रप्रदेश वापस हो गए।

सातवाहनों की जाति—सातवाहनों की मूल उत्पत्ति के साथ-साथ उनकी जाति का प्रश्न भी विवादास्पद है। कुछ विद्वान उन्हें क्षत्रिय तो अधिकांश ब्राह्मण मानते हैं। **कथासरितसागर** में सातवाहन की उत्पत्ति 'सात' नामक यक्ष से बताई गई है जिसपर राजा सवारी करता था। **अभिधम्मचिंतामणि** के अनुसार सातवाहन का अर्थ है "जिसे सुखदायक वाहन प्राप्त हो"। इन उद्धरणों से सातवाहनों की व्युत्तपति पर तो प्रकाश पड़ता है, परंतु उनकी जाति का नहीं। उनकी जाति का निर्धारण उनके अभिलेखों के आधार पर किया जा सकता है। नासिक अभिलेख में

गौतमीपुत्र शातकर्णी को क्षत्रियों के झूठे मान और गौरव का दमन करने वाला कहा गया है। इससे सातवाहनों के क्षत्रिय होने की बात निराधार प्रतीत होती है। पुनः गौतमीपुत्र को 'एक बम्हन्स' अर्थात अद्वितीय ब्राह्मण कहा गया है। भंडारकर इस शब्द का अर्थ ब्राह्मणों का एक-मात्र रक्षक मानकर सातवाहनों को क्षत्रिय मानते हैं, परंतु अनेक विद्वानों ने सातवाहनों को ब्राह्मण ही मानता है। सातवाहनों ने ब्राह्मण धर्म की जो पुनर्स्थापना की उससे भी इस तर्क को बल मिलता है कि सातवाहन ब्राह्मण थे। डॉ० हेमचंद्र चौधरी सातवाहनों में नागों के रक्त की भी कल्पना करते हैं। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सातवाहनों को ब्राह्मण ही माना जाता है।

2.15. सातवाहनों का राजनीतिक इतिहास *(Political History of the Satavahanas)*

अभिलेखीय साक्ष्यों एवं साहित्यिक स्रोतों के आधार पर सातवाहनों के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा तैयार की जा सकती है। इस वंश के शासकों एवं उनके शासनकाल की समस्या विवादग्रस्त है। **मत्स्यपुराण** के अनुसार इस वंश के 30 राजाओं ने लगभग 450 वर्षों तक शासन किया; परंतु **वायुपुराण** का कहना है कि वस्तुतः 30 शासकों में सिर्फ 19 ने ही 300 वर्षों तक राज्य किया। अनेक विद्वान मानते हैं कि सातवाहनों की शक्ति का उदय अशोक की मृत्यु के पश्चात तीसरी शताब्दी ई० पू० में ही हुआ, जबकि अनेक आधुनिक विद्वान यह मानते हैं कि ई० पू० प्रथम शताब्दी के तृतीय चरण में ही सातवाहनों की शक्ति का उदय हुआ। इस तर्कानुसार शुंगों की शक्ति का नाश कर सातवाहनों ने 75 ई० पू० में सत्ता हासिल की। **पुराण** यह भी कहते हैं कि कण्वों का भी अंत सातवाहनों ने ही किया। कण्वों ने 30 ई० पू० तक शासन किया था। अतः आरंभिक सातवाहन शासकों की तिथियाँ बहुत स्पष्ट नहीं हैं, लेकिन तीसरी शताब्दी के प्राप्त अभिलेखों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि अशोक की मृत्यु के बाद ही सातवाहन दक्षिण की राजनीति में सक्रिय हो उठे और उन्होंने एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की।

सिमुक—सातवाहनों की शक्ति को स्थापित करनेवाला प्रथम राजा सिमुक था। उसकी तिथि 60-37 ई० पू० मानी जाती है। पुराणों के अनुसार, उसी ने अंतिम रूप से शुंग-कण्व सत्ता को समाप्त किया, परंतु इस बात के तो प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं कि सिमुक ने मगध पर आक्रमण किया, जहाँ कण्व सुशर्मन राज्य कर रहा था। उसने संभवतः विदिशा का क्षेत्र कण्वों से हस्तगत किया। धर्म में उसकी गहरी अभिरुचि थी। उसने अनेक जैन एवं बौद्ध मंदिरों एवं चैत्यों का निर्माण करवाया; परंतु अपने शासन के दौरान वह एक दुष्ट और अत्याचारी राजा बन गया, अतः उसकी हत्या कर दी गई।

कृष्ण—सिमुक के बाद उसका भाई कृष्ण या 'कान्ह' राजा बना। पुराणों के अनुसार उसने अट्ठारह वर्षों तक राज्य किया, परंतु उसकी ज्ञात तिथि सिर्फ दस वर्षों के शासन (37-27 ई० पू०) का प्रमाण देती है। उसने नासिक तक सातवाहन-शक्ति का विस्तार किया। नासिक-शिलालेख में इसका नाम मिलता है। इसी के राज्यकाल में राज्य के किसी उच्च पदाधिकारी ने नासिक की एक गुफा खुदवाई।

शातकर्णी प्रथम—सातवाहनों का अगला राजा शातकर्णी प्रथम (27-17 ई० पू०) था। वह सिमुक का पुत्र या भतीजा (कृष्ण का पुत्र) था। उसके नाम का उल्लेख अभिलेखों एवं **पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी** में मिलता है। दस वर्षों की अवधि में ही उसने सातवाहनों की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिया। वह दक्षिणापथ का सबसे शक्तिशाली राजा बन बैठा। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए उसने अगिय या अमिय-वंश की राजकुमारी नयनिका से विवाह कर लिया। उसकी रानी नयनिका के अभिलेख से शातकर्णी के कार्यों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। इस अभिलेख के अनुसार शातकर्णी ने पश्चिमी मालवा, अनूपप्रदेश (नर्मदाघाटी) और विदर्भ (बरार) पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उसके साम्राज्य में ऊपरी दक्कन, मध्य एवं पश्चिमी भारत के कुछ भाग, उत्तरी कोंकण और काठियावाड़ शामिल थे। उसने कलिंग के शासक खारवेल से भी युद्ध किया। "इस प्रकार गोदावरी की घाटी में सातवाहनों का पहला राज्य स्थापित हुआ और गंगा की घाटी के शुंग-साम्राज्य तथा पंजाब की पंचनदभूमि के अधिष्ठाता

यवनों के समकक्ष शक्तिशाली माना जाने लगा।''[1] शातकर्णी के इस पराक्रम की प्रशंसा नयनिका के अभिलेख में की गई है। उसे शूर, वीर, **दक्षिणापथपति** तथा **अप्रतिहतचक्र** कहा गया है। शातकर्णी ने ब्राह्मणधर्म के गौरव को भी बढ़ाया। उसने दो अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ करवाए। उसके समय में साम्राज्य की श्री-संपन्नता भी बढ़ गई।

सातवाहन-शक्ति का ह्रास—शातकर्णी प्रथम ने जिस पराक्रम से सातवाहनों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि की थी, वह उसकी मृत्यु के साथ कमजोर पड़ गई। शातकर्णी की मृत्यु के पश्चात उसके नाबालिग पुत्रों (वेदिसिरी और सतिसिरी) के हाथों में सत्ता आई; परंतु उनकी संरक्षिका के रूप में उनकी माता नयनिका ने वस्तुतः शासन किया। पुराणों में इन राजाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक राजाओं के नामों (शातकर्णी द्वितीय, लंबोदर, अपिलक, कुंतल शातकर्णी इत्यादि) का भी उल्लेख मिलता है। ये सभी नाममात्र के शासक थे। इस अवधि में शकों ने महाराष्ट्र के कुछ भाग—कोंकण, मालवा एवं काठियावाड़ पर अधिकार कायम कर लिया। महाक्षत्रप नहपान ने सातवाहनों की शक्ति चूर कर दी। सातवाहनों का 17वाँ राजा हाल (20-24 ई०) हुआ जो एक विद्वान और कवि के रूप में विख्यात है। उसके समय में साहित्यिक प्रगति हुई। उसी ने प्राकृत में **गाथासप्तशती** की रचना की, जिसमें ग्राम्यजीवन की मनोहर झाँकी मिलती है। **बृहत्कथा** का रचयिता गुणाढ्य भी उसी का समकालीन था। हाल के शासन के दौरान भी शक-सातवाहन संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष ने सातवाहनों की शक्ति लगभग नष्ट कर दी। नहपान और उसके दामाद **ऋषभदेव** ने महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया।

2.15(a). गौतमीपुत्र शातकर्णी एवं सातवाहनों का पुनरुत्थान *(Gautamiputra Satakarni and Revival of the Satavahanas)*

सातवाहनों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित करने का श्रेय गौतमीपुत्र शातकर्णी (106-130 ई०) को दिया जाता है। नासिक-प्रशस्ति में उसे ''क्षहरात-वंश का विनाशक तथा सातवाहन-वंश की प्रतिष्ठा का पुनःसंस्थापक'' कहा गया है। वस्तुतः, सातवाहनों का वह सबसे महान राजा था। उसने छिन्न-भिन्न सातवाहन-साम्राज्य को अपने पराक्रम से पुनः संगठित किया एवं इसका विस्तार किया। संभवतः, अपने वंश का वह 23वाँ राजा था। वह पहला सातवाहन राजा था, जिसके नाम के साथ उसकी माता के नाम का भी उल्लेख मिलता है। उसी के समय से इस वंश के राजाओं में अपने नाम के साथ अपनी माता का नाम रखने की भी परंपरा चल निकली। इससे पता चलता है कि इस समय से राज्य में मातृसत्तात्मक तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण बन गए।

नासिक-प्रशस्ति तथा रानी गौतमी बलश्री के अभिलेखों से गौतमीपुत्र शातकर्णी के विजय-अभियानों का अंदाज मिलता है। नासिक-प्रशस्ति तथा जोगलथेम्बी (जिला नासिक, महाराष्ट्र) से प्राप्त चाँदी के सिक्कों से विदित होता है कि सातवाहन राजा ने शक-शासक नहपान को युद्ध में पराजित किया तथा उसके सिक्कों पर पुनः अपना नाम खुदवाया। नहपान को पराजित कर उसने महाराष्ट्र एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्र में फिर से सातवाहनों की सत्ता स्थापित की। पूना के निकट मामाल से प्राप्त एक सरकारी आदेशपत्र, जो अमात्य के नाम जारी किया गया था, से भी महाराष्ट्र पर सातवाहनों के अधिकार की पुष्टि होती है। उसके पुत्र वासिष्ठी-पुत्र पुलुमायी के नासिक-अभिलेख में उसे अनेक युद्धों का विजेता, शत्रुओं का संहारक एवं विजयपताका फहरानेवाला कहा गया है। रानी गौतमी बलश्री के अभिलेख से पता चलता है कि उसने शकों की क्षहरात-शाखा, यवनों एवं पह्लवों की शक्ति का उन्मूलन किया। उसकी विजयों के परिणामस्वरूप सातवाहन दक्षिण के सर्वप्रमुख शक्तिशाली शासक बन बैठे। उसने अपने राज्य का भी विस्तार किया। उसके साम्राज्य के अंतर्गत असिक (गोदावरी और कृष्णा का मध्यवर्ती क्षेत्र), असक (गोदावरी का तटवर्ती प्रदेश), मूलक (पेंढण का समीपवर्ती इलाका), सुरथ (दक्षिणी काठियावाड़), कुकर या कुकुर (उत्तरी काठियावाड़), पारियात्र (पश्चिमी विंध्य के

1. "Thus

नजदीक), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), अनूप (नर्मदा के निकट माहिष्मती का इलाका), विदर्भ (बरार) और आकर-अवन्ति (पूर्वी तथा पश्चिमी मालवा) के प्रदेश सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त, विंध्य से मलय पर्वत (त्रावणकोर) तक के समस्त पर्वतों तथा पूर्वी (महेंद्र) से पश्चिमी (सह्य) घाटों तक का भी वह मालिक था। उसने **पश्चिम के मालिक** (Lord of the West) तथा **प्रतिष्ठान के मालिक** (Lord of Pratisthan) की उपाधियाँ धारण कीं।

एक महान विजेता, योद्धा एवं साम्राज्य-निर्माता के अतिरिक्त गौतमीपुत्र में अन्य गुण भी विद्यमान थे। नासिक-अभिलेख में उसके शारीरिक एवं चारित्रिक गुणों की भी प्रशंसा की गई है। वह सुंदर एवं रूपवान व्यक्ति था। वह अपनी प्रजा की भलाई एवं उनके हितों की सुरक्षा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था। इतना ही नहीं, वह योग्य व्यक्तियों की इज्जत करता था एवं उन्हें आश्रय भी देता था। प्रजा से दयापूर्ण व्यवहार किया जाता था। अपराधियों से भी मानवतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। उसके प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता को राहत पहुँचाना था। इसलिए, न्याय-व्यवस्था पर समुचित बल दिया गया। जनता पर मनमाने कर का बोझ नहीं डाला गया। वह एक महान समाजसुधारक भी था। उसने क्षत्रियों के झूठे अभिमान तथा गर्व को चूर कर ब्राह्मणों तथा 'द्विजवर-कुटुंब-विविधन' (सामाजिक दृष्टि से हीन परिवारों) की स्थिति को ऊँचा किया तथा 'चतुवर्णों में पाई जानेवाली कुरीतियों' को भी दूर किया। उसके समय में ब्राह्मणधर्म का पुनरुत्थान हुआ। अपने शासन के 18वें वर्ष में उसने नासिक के पास पाण्डुलेन में एक गुफागृह बनवाकर उसका दान भी किया। अपने शासन के 24वें वर्ष में उसने कुछ साधुओं को भूमि भी दान में दी।

प्रो० दिनेशचंद्र सरकार का मत था कि गौतमीपुत्र को कर्दमक शकों के हाथों पराजित होना पड़ा था, परंतु यह तर्क अनेक विद्वानों को मान्य नहीं है। इसी प्रकार आर० जी० भण्डारकर यह भी मानते थे कि गौतमीपुत्र और उसका पुत्र वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी एक ही साथ राज्य करते थे; परंतु वास्तविकता यह है कि पुलुमायी गौतमीपुत्र के पश्चात ही शासक बना। अनेक विद्वानों ने सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र और उज्जयिनी के विख्यात शासक विक्रमादित्य में समानता ढूँढ़ने की कोशिश की है; परंतु यह मत भ्रामक और निराधार है। गौतमीपुत्र को नागार्जुन का समकालीन भी मानना उचित नहीं है।

वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी—गौतमीपुत्र शातकर्णी के पश्चात उसका पुत्र वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी (130-154 ई०) सातवाहनों का राजा बना। पुराणों में उसका नाम पुलोमा शातकर्णी और टॉलमी के विवरण में **सिरो-पोलिमेओस** के रूप में मिलता है। मुद्राओं एवं अभिलेखों (नासिक, कार्ले, अमरावती) में भी उसका नाम मिलता है। वह एक योग्य पिता का योग्य पुत्र था, जिसने विरासत में प्राप्त साम्राज्य की न सिर्फ रक्षा की, बल्कि उसका विस्तार भी किया। आंध्रक्षेत्र में सातवाहनों की शक्ति का प्रसार इसी समय हुआ। यह तथ्य आंध्रप्रदेश में प्राप्त उसके सिक्कों के आधार पर कहा जा सकता है। संभवतः, उसी ने नवनर या नवगर की स्थापना की। कन्हेरी-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने शकों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने के लिए शक-महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम की पुत्री से विवाह किया; परंतु इसके बावजूद दोनों वंशों का संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं रह सका। पुलुमायी को रुद्रदामन के हाथों दो बार पराजित होना पड़ा, तथापि वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी ने सातवाहनों की शक्ति और प्रतिष्ठा को बनाए रखा। उसने भी **महाराज** तथा **दक्षिणापथेश्वर** की उपाधियाँ धारण कीं। उसने सामुद्रिक व्यापार को भी बढ़ावा दिया तथा अमरावती के स्तूप का विस्तार किया।

पुलुमायी के उत्तराधिकारी और साम्राज्य का विघटन—पुलुमायी के उत्तराधिकारी (शिवश्री पुलोमा तथा शिवस्कंद शातकर्णी) ने करीब दस वर्षों तक राज्य किया; परंतु वे महत्त्वहीन शासक थे। उनके समय की कोई महत्त्वपूर्ण घटना ज्ञात नहीं है। लगभग 165 ई० में यज्ञश्री शातकर्णी सत्ता में आया। उसे सातवाहनों का अंतिम महान शासक माना जाता है। उसने 195 ई० तक राज्य किया। उसने अपने वंश की प्रतिष्ठा को बनाए रखने का प्रयास किया। उसने रुद्रदामन के उत्तराधिकारियों से उत्तरी कोंकण छीन लिया तथा महाराष्ट्र और आंध्र पर अपना प्रभाव बनाए रखा। शकों के आपसी संघर्ष का लाभ उठाकर उसने कर्दमक शकों से अपरान्त (उत्तरी कोंकण) एवं नर्मदाघाटी छीन ली। उसका अधिकार-क्षेत्र बंगाल की खाड़ी से

अरबसागर तक विस्तृत था। शकों के समान उसने भी रजत-मुद्राएँ चलाईं। उसके कुछ सिक्कों पर जहाज के चित्र मिलते हैं, जिससे उस समय की सामुद्रिक गतिविधियों के महत्त्व का पता चलता है।

यज्ञश्री शातकर्णी के पश्चात सातवाहनों की शक्ति का क्रमशः ह्रास होता गया। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य थे। पुराणों में यज्ञश्री के पश्चात विजयचण्डश्री और पुलुमायी चतुर्थ के नामों का उल्लेख मिलता है। ये सभी शासक नाममात्र के राजा थे। सातवाहनों की कमजोरी का लाभ उठा कर अनेक नई शक्तियों का उदय हुआ जिन्होंने सातवाहन साम्राज्य के विभिन्न भागों पर अधिकार कर लिया। उत्तर-पश्चिम में आभीर, दक्षिण में चुटु तथा आंध्र में इक्ष्वाकुओं का उदय हुआ। दक्षिण-पूर्व में पल्लवों और मध्य प्रदेश में वाकाटकों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। तीसरी शताब्दी में आभीरों के उदय ने सातवाहनों की शक्ति को आघात पहुँचाया। आभीरों के राजा ईश्वरसेन ने सातवाहनों से उत्तरी-पश्चिमी महाराष्ट्र छीन लिया। शक-सातवाहन-संघर्ष से भी सातवाहनों की शक्ति को धक्का लगा। परिणामस्वरूप, सातवाहनों का राज्य बरार, पूर्वी दक्षिण तथा कन्नड़-प्रदेश तक ही सीमित रह गया। बाद में इक्ष्वाकुओं और पल्लवों ने उनके राज्य का विनाश अंतिम तौर पर कर डाला। तीसरी शताब्दी के मध्य तक सातवाहनों की राजनीतिक शक्ति समाप्त हो चुकी थी।

2.16. सातवाहन-शासन का महत्त्व *(Significance of the Satavahana Rule)*

उत्तर-मौर्यकालीन दक्षिण भारतीय इतिहास में सातवाहनों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही। शकों से संघर्ष कर उन्होंने एक बड़े साम्राज्य की स्थापना की। इतना ही नहीं, उन्होंने प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ की, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को व्यवस्थित किया एवं धर्म, कला-कौशल, शिक्षा, भाषा और साहित्य का विकास किया। उनके अधीन दक्कन का सर्वांगीण विकास हुआ। जो कार्य उत्तरी भारत में कुषाणों ने किया, वही कार्य दक्षिण में सातवाहनों ने किया।

प्रशासन (Administration)—सातवाहनों ने साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ इसके प्रशासन की भी समुचित व्यवस्था की। प्रो० रामशरण शर्मा के शब्दों में, "जिस शासनपद्धति का उन्होंने विकास किया, उसकी प्रकृति स्वदेशी थी और यूनानियों, शकों, पार्थियनों और कुषाणों द्वारा भारत में लाई गई राज्य-व्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी।"[1] सातवाहन राजतंत्रात्मक व्यवस्था के पोषक थे। राजा का पद वंशानुगत था। सातवाहनों के आरंभिक शासकों ने 'राजा' की उपाधि धारण की, परंतु महारानी गौतमी बलश्री के एक अभिलेख से विदित होता है कि बाद के कुछ शासकों ने 'महाराजा' की उपाधि भी धारणा की। राजा राज्य का सर्वोच्च प्रशासनिक पदाधिकारी था। यद्यपि राजा के अधिकार असीम थे, तथापि वह निरंकुश नहीं था, बल्कि प्रजा की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखता था। सातवाहन-शासकों ने **धर्मशास्त्रों** में वर्णित राजधर्म एवं वर्णाश्रम-धर्म के पालन पर विशेष बल दिया। कुषाणों की तरह ही सातवाहनों ने भी राजत्व को देवत्व के साथ जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी तुलना राम, भीम, केशव, अर्जुन इत्यादि देवताओं और महापुरुषों के साथ की। सातवाहन प्रशासन की एक विशेषता यह भी है कि उनके अंतर्गत मातृसत्तात्मक तत्त्व ज्यादा मजबूत थे। राजा अपने नाम के साथ अपने माता का नाम भी रखते थे, जैसे—गौतमीपुत्र शातकर्णी, वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी इत्यादि। इतना ही नहीं, सातवाहनों की रानियाँ भी प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहती थीं। कभी-कभी वे नाबालिग राजा के संरक्षक के रूप में शासन करती थीं जैसे रानी नयनिका। राज्याधिकारियों और सामंतों की पत्नियाँ भी अपने पति का प्रशासकीय पदनाम धारण करती थी; जैसे—**महासेनापत्नी, महातलवारी** इत्यादि।

राजा को प्रशासन में सहायता देने के लिए **सचिव** एवं **अमात्य** होते थे। अमात्य का पद संभवतः व्यापारियों को दिया जाता था। कारीगरों को भी संभवतः प्रशासन में स्थान दिया जाता था। सचिवों एवं अमात्यों के अतिरिक्त **महाभोज, महासेनापति, भांडागारिक, गौलमिक** जैसे पदाधिकारियों का भी उल्लेख मिलता है। प्रशासनिक सुविधा के लिए संपूर्ण साम्राज्य विभिन्न

आहारों में विभक्त था, जिनपर अमात्य शासन करते थे। आहार ग्रामों में विभक्त थे। ग्राम-प्रशासन **गौलमिकों** के अधीन था। स्थानीय स्वशासन में नगरसभा, ग्रामसभा, निगम इत्यादि भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहते थे। **कटक** और **स्कन्धवार** सैनिक-शिविर और अस्थायी प्रशासनिक केंद्र थे। सातवाहनों की न्याय-व्यवस्था, सैनिक-संगठन और राजस्व-प्रणाली के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है।

सातवाहनों ने पहली बार भूमि-अनुदान की प्रथा चलाई। भूमिदान बौद्धों और ब्राह्मणों को समान रूप से दिए गए। इन्हें करमुक्त भूमि प्रदान की गई। इन्हें दी गई भूमि में राज्याधिकारियों एवं पुलिसकर्मियों का प्रवेश वर्जित कर दिया गया। फलस्वरूप, ऐसा दान प्राप्त करनेवाले व्यक्ति स्वायत्तता-प्राप्त बन गए। इस प्रथा ने जहाँ राजा की स्थिति को कमजोर कर दिया, वहीं सामंतवादी व्यवस्था के विकास को प्रश्रय भी दिया। सातवाहन-प्रशासन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने "अशोक के प्रशासन के कुछेक तत्त्व क़ायम रखे, किंतु साथ ही, उन्होंने अनेक नए और महत्त्वपूर्ण तत्त्व समाविष्ट भी किए, जिन्हें आगे वाकाटकों और गुप्तों ने अपना लिया।"

सामाजिक संगठन (Social organisation)—सातवाहन मूलतः दक्षिण के किसी कबीले से संबद्ध थे; परंतु कालांतर में उनका ब्राह्मणीकरण हो गया। फलतः, सातवाहन-शासकों ने उत्तर भारत में प्रचलित ब्राह्मण-व्यवस्था के अनुरूप ही वर्णव्यवस्था तथा आश्रम-व्यवस्था के पालन पर बल दिया। गौतमीपुत्र शातकर्णी इस बात का दावा करता है कि उसने वर्णव्यवस्था की स्थापना की तथा ब्राह्मणों के प्रभुत्व को पुनःस्थापित किया। फलस्वरूप, समाज में ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया। सातवाहन-शासक भी ब्राह्मण होने का ही दावा करते हैं। अनेक शकों को भी क्षत्रिय वर्ण में आत्मसात कर लिया गया। यह प्रक्रिया सातवाहनों और शकों के बीच वैवाहिक संबंधों के फलस्वरूप हुई। चतुवर्ण के अतिरिक्त व्यवसाय के आधार पर भी अनेक वर्णों का उदय इस वर्ग में हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवसाय के आधार पर भी समाज चार वर्णों में विभक्त था। पहली श्रेणी में राज्य के प्रमुख पदाधिकारी, जैसे महाभोज, महारथी, महासेनापति इत्यादि थे। दूसरी श्रेणी में अमात्यों, महामात्रों, भांडागारिक, सार्थवाह इत्यादि को रखा गया था। अगले वर्ग में वैद्यों, लेखकों, सुवर्णकारों, कृषकों इत्यादि को रखा जा सकता है। गंधिक भी समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। सबसे निम्न श्रेणी में मालाकार, बढ़ई, लुहार, मछुआरे इत्यादि आते थे। समाज की प्रमुख इकाई कुटुंब थी, जिसका प्रधान कुटुंबिन होता था। पितृसत्तात्मक समाज होने के बावजूद सातवाहनों में मातृसत्तात्मक तत्त्व बहुत अधिक प्रबल थे। इसलिए, समाज में स्त्रियों की प्रतिष्ठा थी। राजाओं के साथ उनकी माताओं का नाम भी जोड़ा जाता था। रानियाँ भी प्रशासन पर अपना प्रभाव रखती थीं। कभी-कभी वे अल्पवयस्क शासकों की संरक्षिका भी बन जाती थीं। उन्होंने दान भी दिए एवं अभिलेख खुदवाए। राजकीय अधिकारियों की पत्नियाँ भी विशेष दर्जा रखती थीं। स्त्रियों को धार्मिक स्वतंत्रता भी प्राप्त थी। उनके मध्य पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं था।

आर्थिक जीवन (Economic life)—सातवाहन-युग आर्थिक संपन्नता का युग था। इस समय कृषि, शिल्प, व्यवसाय और वाणिज्य का पूर्ण विकास हुआ। कृषि मुख्य पेशा था। 200 ई० पू० के पश्चात दक्कन में कृषि में प्रयुक्त होनेवाले लोहे के उपकरणों की संख्या बढ़ जाती है। लोहे के निर्मित हत्थेदार फावड़े, हँसिया, कुदाल, हल के फाल इत्यादि उपकरण बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इससे विस्तृत कृषि का आभास मिलता है। चावल एवं कपास की खेती मुख्य रूप से होती थी। कृषि के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का भी इस समय उदय हुआ। लुहार का व्यवसाय एक प्रमुख व्यवसाय था। ये उपकरण एवं हथियार बनाते थे। करीमनगर और वारंगल से उन्हें लोहा प्राप्त होता था, जिसका उपयोग वे विभिन्न प्रकार से करते थे। करीमनगर जिला से उत्खननों के दौरान एक लुहार के दुकान का प्रमाण मिला है। सुवर्णकारों का व्यवसाय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। सोने के आभूषण बनाए जाते थे। अन्य प्रमुख व्यवसायों में कपड़ा बुनने, इत्र, माला, लकड़ी आदि के सामान बनाने का उल्लेख किया जा सकता है। शिल्पी **संघों, श्रेणी** या **निकाय** में संगठित थे। ये श्रेणियाँ स्वायत्तता-प्राप्त संस्थाएँ थीं, जो अपने-अपने शिल्पों की प्रगति के लिए आवश्यक कदम उठाती थीं।

सातवाहनयुगीन संपन्नता बहुत-कुछ व्यापार-वाणिज्य पर आश्रित थी। समुद्र द्वारा विदेशों से, विशेषकर रोमन साम्राज्य से, इस समय व्यापार का विकास हुआ। विदेशी व्यापार के कारण अनेक बंदरगाहों का उदय हुआ। इस समय के प्रमुख बंदरगाहों में भरुकच्छ, कल्याण, सोपारा इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन बंदरगाहों द्वारा विदेशी व्यापारी अपना सामान भारत ले आते थे और भारतीय व्यापारी भी विदेशों में व्यापार करने जाते थे। भारत मुख्यतः मसाले एवं कच्चे माल का निर्यात करता था तथा विदेशों से सोना, शीशे के बरतन, बढ़िया शराब, वस्त्र इत्यादि मँगवाता था। विदेशी व्यापार का प्रमाण **प्लिनी** के **नेचुरल हिस्ट्री** तथा **पेरीप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी** नामक पुस्तक एवं दक्षिण से प्राप्त बड़ी संख्या में रोमन सिक्कों एवं अन्य सामानों से मिलता है। इस व्यापार के कारण अनेक विदेशी व्यापारी आकर भारत के समुद्र-तट पर बस भी गए। ऐसी ही एक विदेशी बस्ती (रोमन) का प्रमाण अरिकामेडू (पांडिचेरी) की खुदाइयों से मिला है। विदेशी व्यापार के साथ-साथ भारत का आंतरिक व्यापार भी स्थलमार्ग द्वारा विकसित हुआ। व्यापार के विकास में सिक्कों के प्रचलन से बहुत अधिक सहायता मिली। कुषाणों की ही तरह सातवाहनों ने भी बड़ी संख्या में सिक्के (ताँबा, काँसा, लीड इत्यादि के) चलाए। शिल्प एवं व्यवसायों के उदय तथा व्यापार-वाणिज्य की प्रगति ने नगरों के विकास में भी सहायता प्रदान की। गंगाघाटी की ही तरह ईसा की प्रथम तीन शताब्दियों में महाराष्ट्र और कर्नाटक में भी टगर, पैठन, धान्यकटक, अमरावती, नागार्जुनकोंडा इत्यादि नगरों का विकास हुआ। सातवाहन-युग के पश्चात ये नगर अपना महत्त्व खो बैठे।

कला एवं स्थापत्य (Art and architecture)—सातवाहनों ने कला और स्थापत्य के विकास को भी प्रभावित किया। उत्तर भारत के संपर्क में आने से उनके यहाँ भी उन तत्त्वों का विकास हुआ, जो उत्तरी भारत में ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी के पश्चात महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे थे। सातवाहनों के अधीन भी पकाई गई ईंटों, खपड़ों एवं घेरेदार कुओं का प्रचलन देखने को मिलता है। जल की निकासी के लिए ढकी हुई नालियाँ बनाई गईं। शहरों की घेरेबंदी की गई। इस काल में अनेक **स्तूप** एवं **चैत्य** भी बनाए गए। अनेक मंदिर एवं गुफाएँ पहाड़ों को काटकर बनाईं गईं। इस समय के बनाए गए स्तूपों में सबसे प्रमुख अमरावती और जगयपेट के स्तूप हैं। अमरावती-स्तूप की मुख्य विशेषता इसकी संगमरमर की आवरण-पट्टिकाएँ हैं, जिनपर उत्कृष्ट चित्रकारी की गई है। स्तूपों का निर्माण बुद्ध के अवशेषों के ऊपर हुआ था। चैत्य या मंदिरों का भी निर्माण हुआ। नासिक, कार्ले एवं कन्हेरी में सुंदर चैत्य बने। इन सभी चैत्यों में सबसे प्रसिद्ध कार्ले का चैत्य है। इन चैत्यों की छतों एवं दीवारों पर सुंदर, रंगीन चित्र बनाए गए। चैत्यों के निकट संन्यासियों के निवास के लिए **विहार** या मठ भी बनवाए गए। नासिक के निकट ऐसे अनेक विहार अवस्थित हैं।

धार्मिक स्थिति (Religious condition)—जिस प्रकार मौर्य-साम्राज्य के पतन के पश्चात उत्तरी भारत में शुंगों ने ब्राह्मणधर्म की पुनःप्रतिष्ठा की, उसी प्रकार दक्षिणी भारत में सातवाहन-शासकों ने वैदिक धर्म या ब्राह्मणधर्म को पुनःस्थापित किया। सातवाहन-अभिलेखों में इंद्र, सूर्य, वरुण आदि वैदिक देवताओं एवं अश्वमेध, वाजपेय आदि यज्ञों का उल्लेख मिलता है। सातवहन-शासकों एवं उनकी रानियों ने वैदिक यज्ञों एवं कर्मकाण्डों की स्थापना पर बल दिया। यज्ञों के परिणामस्वरूप ब्राह्मणों को बहुमूल्य दान भी दिए गए। ब्राह्मणों को करमुक्त भूमि दान में दिए गए। वैष्णव एवं शैवधर्म का भी प्रचार दक्कन में सातवाहनों के अधीन हुआ। कृष्ण-वासुदेव की पूजा प्रचलित हुई। यद्यपि सातवाहन-नरेश स्वयं वैदिक धर्म में विश्वास करते थे एवं उन्होंने इसे राज्याश्रय भी दिया तथापि उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। ब्रह्मण धर्म की तरह उन्होंने बौद्धधर्म के विकास को भी प्रभावित किया। बौद्धों को भी भूमि-अनुदान दिए गए, स्तूप, गुहाएँ एवं विहार बनवाए गए। फलस्वरूप, दक्कन में महायान बौद्धधर्म का भी विकास हुआ। अमरावती, नागार्जुनकोंडा, नासिक, जुनार इत्यादि बौद्धधर्म के प्रमुख केंद्र बन गए।

शिक्षा, भाषा एवं साहित्य (Education, language and literature)—सातवाहनों के अधीन शिक्षा, भाषा एवं साहित्य की भी यथेष्ट प्रगति हुई। ब्राह्मणों एवं बौद्धों, दोनों ने शिक्षा-प्रचार का कार्य किया। विद्यार्थियों को लौकिक और धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। मौखिक

शिक्षा की भी व्यवस्था थी। अध्यापकों को राज्य एवं धनी व्यक्तियों से अनुदान प्राप्त होता था। व्यावसायिक संगठन भी शिक्षा देने का कार्य करते थे। इस युग में प्राकृत-भाषा एवं ब्राह्मी-लिपि का विकास हुआ। भाषा एवं लिपि के विकास ने साहित्य के विकास को भी प्रभावित किया। इस समय प्राकृत में अनेक रचनाएँ हुईं। इनमें प्रसिद्ध हैं—**कातंत्रव्याकरण** (ले० शर्ववर्मन), **बृहत्कथा** (ले० गुणाढ्य), **गाथासप्तशती** (ले० हाल) तथा **लीलावतीपरिणय**। सातवाहन-काल के अंतिम चरण में प्रसिद्ध बौद्धविद्वान एवं दार्शनिक नागार्जुन ने संस्कृत में रचनाएँ कीं।